IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के "दार्शनिक विचार- संस्कृति" का मूल्यांकन

***डॉ. अनिल कुमार**

असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, श्री बजरंग पी. जी. कॉलेज, दादर आश्रम, सिकंदरपुर, बलिया, उत्तर प्रदेश

सारांश

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी अपने दार्शनिक विचार के अंतर्गत बहुत ही महत्वपूर्ण बिंदुओं पर अपने विचार दिए। उनमें से एक विचार 'संस्कृति' पर है। दीनदयाल जी देश के सर्वांगीण विकास के लिए संस्कृति पर बहुत जोर देते हैं। दीनदयाल जी का मानना है कि संस्कृति, संस्कारों से आती है। किसी भी मानव समाज या देश का जितना मजबूत संस्कार होगा उतना ही मजबूत उसकी संस्कृति होगी और उतना ही वह समाज और देश उत्थान करेगा। दीनदयाल जी को अपने देश के संस्कृति से बहुत लगाव था। उनका मानना था की समाज के सभी समस्याओं का समाधान उसके संस्कृति में निहित होती है। दीनदयाल जी संस्कृति को लेकर रूढ़िवादी नहीं बल्कि प्रगतिवादी थे। उनका कहना है कि भारतीय संस्कृति एकात्मवादी है। सभी धर्मों व पक्षों के बीच समन्वय स्थापित करती है। भारतीय संस्कृति संस्कारवादी है। जिस तरह आज समाज में धर्म और संप्रदाय को लेकर भेदभाव बढ़ता जा रहा है, ऐसे समय में देश और समाज के बीच एकता व मानवता स्थापित करने के लिए यह दर्शन बहुत ही प्रासंगिक प्रतीत होता है।

कुंजी शब्द - एकात्म मानववाद, संस्कृति, संस्कार, धर्म, सम्प्रदाय, रूढ़िवादी, युगानुकूल, देशानुकूल, प्रकृति, विकृति, व्यष्टि, समष्टि।

एकात्म मानववाद को जानने व समझने के लिए पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के दार्शनिक विचार को जानना ही पड़ेगा। एकात्म मानववाद कोई नई विचारधारा नहीं है बल्कि जो हमारी सनातनी व्यवस्थाएं थी ,सनातनी अर्थ- रचना थी , उसी का युगानुकूल रूप है।

इस दर्शन का आधार ही भारतीय संस्कृति और प्रकृति है।

दीनदयाल उपाध्याय जी ने मानव समाज के कुछ समस्याओं को बताए भी तथा उनका समाधान भी प्रस्तुत किए, जो इस प्रकार है।–

आज मानव समाज के समक्ष उपस्थित कुछ मूलभूत समस्याएं और उनका सामंजस्य-

- व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ सामाजिक अनुशासन बनाये रखना
- आर्थिक विकास के साथ सामाजिक न्याय को भी ध्यान में रखना
- विशेषज्ञता के साथ साथ समग्रता का विचार
- राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता के साथ अंतरराष्ट्रीय सहयोग की भावना

देश के समक्ष उपस्थित चुनौतीपूर्ण समस्याएं एवं उनका सामंजस्य-

- अत्याधुनिक तकनीकी ज्ञान के साथ साथ रोजगार अवसरों की वृद्धि पर भी ध्यान देना
- विकेंद्रित उत्पादन प्रक्रिया के साथ उत्पादन क्षमता में भी वृद्धि करना
- शहरीकरण के साथ सांस्कृतिक आधार को भी बनाये रखना
- भारतीय संस्कृति, जीवनमूल्यों के साथ वैज्ञानिक व टेक्नोलॉजी का विकास
- अपनी पृथक पहचान की सुरक्षा के साथ देश की विविधता का भी ध्यान रखना

दीनदयाल उपाध्याय जी द्वारा उठाए गए उपरोक्त सभी प्रश्न आज भी उतने ही समीचीन है जितने उस समय थे। आज भी देश के सामने ऐसे ही बहुत समस्याए विद्यमान है जिनका समाधान एकात्म मानववाद दर्शन में है।

दीनदयाल उपाध्याय जी के इस दर्शन के अंतर्गत अनेक दार्शनिक अवधारणाए है। जिनमे से एक दार्शनिक अवधारणा 'संस्कृति' है।

संस्कृति-

दीनदयाल उपाध्याय जी के एकात्म मानववाद दर्शन का सबसे प्रमुख आधार 'संस्कृति' है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी को अपनी संस्कृति से बहुत लगाव था। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का मानना है कि मानव जगत की समस्त समस्याओं का समाधान उसके संस्कृति में निहित होती है। किसी भी देश की राजनीति कैसी होगी? वहां की संस्कृति तय करती है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी स्वयं लिखते हैं "मैं राजनीति में संस्कृति का राजदूत हूं।"

दीनदयाल उपाध्याय जी का कहना है कि "आज राष्ट्रीय और मानवीय दृष्टि से बहुत जरूरी हो गया है कि हम भारतीय संस्कृति के तत्वों का विचार करें।"

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी कहते हैं कि 'कल्चर' शब्द का अर्थ 'संस्कृति' है , यह सही नहीं है। क्योंकि 'संस्कृति' शब्द भारत का 'मौलिक शब्द' है। यदि संस्कृति को समझना है तो पहले हमें 'संस्कार' को जानना होगा। संस्कार वह अच्छाइयां हैं या वे अच्छे गुण हैं जिसे व्यक्ति अपने सामाजिक परिवेश और वातावरण से प्राप्त करता है और यह अच्छे गुण अंततः मानव के स्वभाव का अभिन्न अंग बन जाती है। मानव जाति के इन स्वभाव जनित अच्छाइयों से उत्पन्न सामाजिक कृतियां ही 'संस्कृति' है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के शब्दों में, "संस्कारों द्वारा निर्मित वस्तु संस्कृति है।"

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी भारतीय जनसंघ को 'संस्कृतिवादी पार्टी' कहते हैं। जनसंघ का आर्थिक , राजनीतिक , और सामाजिक चिंतन 'भारतीय संस्कृति' पर ही आधारित है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी संस्कृति को बहुत व्यापक रूप में देखते हैं और परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि "संसार में एकता का दर्शन कर उसके विविध रूपों के बीच परस्पर पूरकता को पहचान कर उनमें परस्परानुकूलता का विकास

करना तथा उनका संस्कार करना संस्कृति है। प्रकृति के ध्येय की सिद्धि के लिए अनुकूल बनना संस्कृति तथा उसके प्रतिकूल बनना विकृति है।"

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी कहते हैं संस्कृति ,प्रकृति की अवहेलना नहीं करती है बल्कि प्रकृति में मानव जाति के प्रति उनके सुख व कल्याण को बढ़ाने वाले जो गुण हैं ,उनको बढ़ावा देना ही संस्कृति का कार्य है।

उपरोक्त संदर्भ में पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी एक उदाहरण देते हुए कहते हैं ,"भाई-भाई का संबंध हो , माता-पुत्र का संबंध हो ,पिता-पुत्र का सम्बन्ध हो या भाई-बहन का संबंध हो , यह प्रकृति की देन है। यह संबंध केवल मनुष्य में ही नहीं होता है बल्कि पशुओ में भी होता है। इन दोनों में अंतर है जैसे- एक मां के दो बेटे हैं और एक गाय के दो बछड़े भाई हैं। परंतु इनमें अंतर है, वह अंतर कहां पर है ? पशु उस प्रकृति के संबंध को भूल जाता है और उस आधार के ऊपर अपने बाकी संबंधों का निर्माण नहीं कर पाता है परंतु मानव इस बात को याद रखता है और इसी आधार पर अपने जीवन के व्यवहार की दिशा निश्चित करता है। इस विचार से वह अपने पारस्परिक संबंधों के निर्माण करने का विचार करता है। मानव मूल्यों तथा उसके निष्ठा का निर्धारण इसी आधार होता है। भाई-भाई के बीच प्रेम भी होता है और झगड़ा भी। परंतु हम प्रेम को अच्छा मानते हैं क्योंकि हमारा लक्ष्य बंधुभाव होता है। हम झगड़ा को मानव समाज के लिए अच्छा नहीं मानते है। और झगड़ा के आधार पर मानव व्यवहार का विश्लेषण किया जाय और इसमें एक आदर्श जीवन का स्वप्न देखा जाय तो यह आश्चर्य की ही बात होगी।"

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी 'संस्कार' के विपरीत 'विकार' का उल्लेख करते हैं। वह कहते हैं कि "जैसे संस्कारो द्वारा संस्कृति प्रकट होती है ,वैसे ही विकारों द्वारा विकृति।" प्रकृति में दोनों ही विद्यमान है ,अगर मानव जाति को बचाना है ,उन्हें आगे ले जाना है तो हमें संस्कारों के साथ अर्थात हम सबको संस्कृति के साथ चलना होगा । पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी कहते हैं कि प्रकृति में क्रोध भी है , लोभ भी हैं। मोह भी है ,प्रेम भी है। मनुष्य प्रकृति में त्याग भी और तपस्या भी है। यह सभी मनुष्य के जीवन में होता रहता है। यदि हम काम , क्रोध ,मोह व लोभ को जीवन का आधार बनाकर विचार करें तो हम आगे नहीं बढ़ सकते। मानव जाति को क्रोध का दमन करना चाहिए । हमारे जीवन का आधार क्रोध नहीं बल्कि उसका दमन होना चाहिए।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी पाश्चात्य संस्कृति से भारतीय संस्कृति की तुलना करते हुए भारतीय संस्कृति की अनेक विशेषताओं पर प्रकाश डाले हैं। जैसे-

- भारतीय संस्कृति की पहली महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह मानव जाति के संपूर्ण जीवन का ,संपूर्ण सृष्टि का संकलित विचार करती है। इसका दृष्टि एकात्मवादी है। भारतीय संस्कृति टुकड़ों-टुकड़ों में विचार नहीं करती है।
- भारतीय जीवन अध्यात्म प्रधान है। लेकिन हम भौतिक उत्कर्ष की भी उपेक्षा नहीं करते हैं। हमारा उद्देश्य मानव जाति का पूर्णता है ,एकांग नहीं।
- भारतीय संस्कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता 'धर्म' है। जिसके कारण देश में राजा , प्रजा ,समाज और व्यक्ति सभी अनुशासित और संयमित होते हैं। प्रकृति का जो शाश्वत व खोजे हुए नियम है ,उसे ही धर्म कहते हैं।
- भारतीय संस्कृति, जीवन का केंद्र राज्य को नहीं अपितु धर्म एवं संस्कृति को मानती है।
- भारतीय संस्कृति संस्कार-वादी है।
- भारतीय संस्कृति समन्वय-वादी है। यह व्यक्ति व समाज में समन्वय ,भौतिक व आध्यात्म में समन्वय ,राष्ट्र व विश्व में समन्वय तथा विभिन्न विचारो व पंथों में समन्वय ही भारतीय संस्कृति का विशिष्ट लक्षण है।

डॉ. मुरली मनोहर जोशी जी (पंडित दीनदयाल: व्यक्ति और विचार) लिखते हैं कि हम लोग उनसे पूछते थे कि पंडित जी 'संस्कृति' क्या होती है? पंडित जी बड़े ही सरल ढंग से समझाते थे कि भाई देखो ,प्रकृति तो बिल्कुल बोधगम्य है। मनुष्य को भूख लगती है - यही उसकी प्रकृति है। दूसरे के साथ मिलजुल कर खाना चाहिए - वह इस भूख लगने वाली नैसर्गिक प्रकृति का एक विकास है - मानव समाज को स्वस्थ रखने के लिए , इसको ठीक रखने के लिए ,यही संस्कृति है। दूसरों से छीन कर खा जाना ,यह विकृति है। यदि व्यक्ति अपने आत्मा और विश्वात्मा का

अनुभव करता है तो वह स्वतः संस्कृति की ओर चला जाता है। इसलिए पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी हमेशा कहते थे कि व्यष्टि और समष्टि का संबंध होना चाहिए। यदि व्यक्ति सूक्ष्म है तो समष्टि विराट है। व्यष्टि बूंद है तो समष्टि सागर है। जीवन के लिए व्यष्टि और समष्टि में समन्वय जरूरी है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी भारतीय संस्कृति को बहुत महत्व देते हैं किंतु इसका यह मतलब नहीं है कि वह रूढ़िवादिता में फँस जाते हैं। उनका यह मानना है हमें भारतीय संस्कृति का संरक्षण नहीं बल्कि उसे गति देकर सजीव व सक्षम बनाना है। भारतीय संस्कृति में अनेक रुढ़ियां थी जिसको वे समाप्त करना चाहते थे और बहुत सुधार करना चाहते थे। यदि समाज में छुआछूत की भावना है तो उसको दूर किए बिना हम राष्ट्र को आगे नहीं ले जा सकते हैं।

इस प्रकार देखा जाए तो पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी संस्कृति के गुणों के समर्थक थे जिसको वह आगे ले जाना चाहते थे। भारतीय संस्कृति के संदर्भ में पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी को देखा जाए तो उनका दृष्टि प्रगतिवादी था ,रूढ़िवादी नही। साथ ही साथ उनका दृष्टि समन्वयवादी है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी किसी भी विचारधारा का आंख मूंद कर विरोध नहीं करते थे चाहे वह विदेशी ही क्यों ना हो। उनका कहना था कि हम संपूर्ण मानव जाति के ज्ञान और उपलब्धियों का संकलित विचार करें। इन तत्वों में जो हमारा है उसे युगानुकूल बनाएं और जो विदेशों से लिया गया है उसे देशानुकूल बनाएं।

स्वदेशी को युगानुकूल एवं विदेशी को स्वदेशानुकूल बनाने की अपनी विचारधारा के कारण ही पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी कहते हैं, "हम भारत को न तो किसी पुराने समय की प्रतिछाया बनाना चाहते हैं और ना रूस या अमेरिका का अनुकृति।"

निष्कर्ष-

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में देखा जाए तो दीनदयाल उपाध्याय जी संस्कृति के जो अच्छे गुण हैं उनको बढ़ाना चाहते हैं, जिससे मानव जाति का विकास हो सकें तथा मानव जाति के साथ-साथ समाज और राष्ट्र का भी विकास कर सके और साथ ही साथ अन्य संस्कृतियों के जो अच्छे गुण हैं उनको भी लेकर व देशानुकूल बना करके मानव समाज का विकास करना चाहते है।

दीनदयाल उपाध्याय जी सभी धर्मों के बीच में और सभी विचारों के बीच में समन्वय स्थापित करके मानव जाति का शाश्वत और समग्र विकास करना चाहते है।

वर्तमान में देश व समाज में जिस तरह विभिन्न जातियों, धर्मों, सम्प्रदाओं के बीच विभेद और संघर्ष की स्थिति है, दुश्मनी है, ऊँच-नीच की भावना है, पक्षपात की भावना है, समन्वय की कमी है। ऐसे समय में इस दर्शन की प्रासंगिकता और बढ़ जाती है।

संदर्भ-

1. उपाध्याय, दीनदयाल. एकात्म मानववाद. नई दिल्ली: भारतीय जनसंघ कार्यालय.

2. उपाध्याय, दीनदयाल (1960). राष्ट्रजीवन की समस्याएं. लखनऊ: राष्ट्रधर्म प्रकाशन.

3. उपाध्याय, दीनदयाल (1972). राष्ट्रचिंतन. लखनऊ: राष्ट्रधर्म प्रकाशन.

4. उपाध्याय, दीनदयाल (1979). राष्ट्रजीवन की दिशा. लखनऊ: लोकहित प्रकाशन.

5. उपाध्याय, दीनदयाल (1989). हिन्दू संस्कृति की विशेषता. गाज़ियाबाद: जागृति प्रकाशन.

6. ठेंगड़ी, दत्तोपंत (1991). पंडित दीनदयाल उपाध्याय: व्यक्ति दर्शन खंड- 1: तत्व जिज्ञासा. नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन.

7. गुप्त, बजरंग लाल (2019). राष्ट्र दृष्टि. प्रयागराज: संपादक- डॉ. चन्द्र प्रकाश सिंह, अरुंधति वशिष्ठ अनुसंधान पीठ.

8. गुप्त, बजरंग लाल (2017). भारतीय अस्मिता की निरंतरता. प्रयागराज: संपादक- डॉ. चन्द्र प्रकाश सिंह, अरुंधति वशिष्ठ अनुसंधान पीठ.

9. पाठक, विनोद चंद्र (2009). पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक चिन्तन. नई दिल्ली: प्रकाशक- आर. डी. पाण्डेय, सत्यम पब्लिशिंग हाऊस.

10. गुप्त, बजरंग लाल (2010). एकात्म दृष्टि- भारत का भविष्य. प्रयागराज: संपादक- डॉ. चन्द्र प्रकाश सिंह, अरुंधति वशिष्ठ अनुसंधान पीठ.

11. शर्मा, महेश चंद्र (1994). दीनदयाल उपाध्याय कर्तव्य एवं विचार. नई दिल्ली: वसुधा पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड.

12. जोशी, मुरली मनोहर (1991). दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति और विचार. उत्तर प्रदेश संदेश, अंक- 9.

13. गोपाल, कृष्ण (2019). राष्ट्र का राजनीतिक प्रबोधन और एकात्म मानव दर्शन. पंडित दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति और व्यक्तित्व खण्ड - 1, प्रयागराज: संपादक- डॉ. जितेंद्र कुमार संजय और डॉ. इंद्र कुमार ठाकुर, साहित्य भंडार.

14. नेने, विनायक वासुदेव (1986). पंडित दीनदयाल उपाध्याय: विचार दर्शन खंड- 2 एकात्म मानव दर्शन. नई दिल्ली: सुरुचि प्रकाशन.